

गीतांजलि : आध्यात्मिक चेतना का स्वरूप और समकालीन प्रासंगिकता

हरदीप सिंह

डॉ० रश्मि चतुर्वेदी

गीतांजलि' एक सार्वकालिक क्लासिकल रचना है जिसका महत्त्व हर युग में अक्षुण्ण बना रहेगा। यह भारतीय संस्कृति की एक महान कलाकृति है जो विश्व मानव के सामने एक लाईटहाउस का काम करती है। नोबेल प्राईज वाली 'गीतांजलि' और बंगला में लिखी 'गीतांजलि' एक ही कृति नहीं है। नोबेल बंगला वाली 'गीतांजलि' में 51 कविताएँ बंगला वाली 'गीतांजलि' की हैं, शेष 52 कविताएँ अन्य संग्रहों- जैसे खेया जैवेध, शिशु, गीति माल्य आदि से ली गई हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर अब तक रवीन्द्रनाथ संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। रवीन्द्रनाथ ने कई सौ ग्रन्थ लिखे हैं, इनमें कविताएँ, उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, निबन्ध और आलोचना है। साहित्य अपने व्यापक अर्थ में जो कुछ भी सूचित करता है, उन सब पर उनका अबाध अधिकार था। एक दिन संसार के सुधी-समाज ने आश्चर्य के साथ देखा कि पराधीन भारतवर्ष में- जिस भारत वर्ष को अब तक अर्ध-सभ्य देश से बहुत ऊपर का नहीं समझा जाता था- एक ऐसा कविरत्न पैदा हुआ है जिसका तेज अद्वितीय है। इस कवि के कुछ गान ही अंग्रेजी गद्य में अनूदित होकर यूरोप में पहुँच पाए थे, पहले तो जो गान वहाँ तक पहुँच पाए थे, वे संख्या में इतने कम थे कि उनसे कवि की वास्तविक प्रतिभा का दशमांश भी उपस्थित नहीं किया जा सकता था। दूसरे उस पर वह अनुवाद गद्य में था। और गद्य भी कैसा - एक अंग्रेज समालोचक के शब्दों में 'बाएँ हाथ से लिखा हुआ।' तो भी अंग्रेज जनता इस बाएँ हाथ के गद्य से अत्यधिक प्रभावित हुई। वहाँ के साहित्यकारों ने ठीक ही कहा कि इस प्रकार का 'छन्द-सम्पन्न' गद्य उनके साहित्य में पहली बार दिखाई पड़ा है। उन्नीसवीं शताब्दी के जादूभरी लेखनी वाले कवियों- वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, ब्राउनिंग, रोजेरी आदि की अमर कविताएँ बीसवीं शताब्दी के सहृदयों को अब तक मुग्ध कर रहीं थीं, ऐसी परिस्थिति में 103 गीतों का- 'बाएँ हाथ के गद्य' में अनूदित होने वाले कवि का इस प्रकार सम्मान पाना कुछ साधारण बात न थी, ये कवि थे रवीन्द्रनाथ, और गीतों का संग्रह 'गीतांजलि'।¹ इस प्रकार यूरोप को भारतीय कविता और भारतीय संगीत के उद्दाम छंदों और कोमल कठोर भावों से मुग्ध और चकित कर देने वाले महाकवि रवीन्द्रनाथ प्रथम भारतीय हैं।²

प्रश्न यह पैदा होता है कि जिस विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'भारतवर्ष के चैतन्य के प्रकाश को देश-देशान्तरों में फैलाकर संसार का ध्यान विश्व एकता तथा मानव-बन्धुत्व के उन आदर्शों की ओर आकृष्ट किया जिनका कि हमारा देश अत्यन्त प्राचीन काल से समर्थक रहा है' उसकी वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता क्या है?

'रवीन्द्रनाथ भारतीय चेतना के पुनर्जागरण के विख्यात चारण बन कर उदित हुए, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से संसार के सभी देशों को विमुग्ध कर उनमें मानव एकता तथा विश्वबंधुत्व की वैष्णव भावना का प्रचार किया। 'गीतांजलि' जिस प्रस्थान बिंदु से साहित्यपारखियों तथा कलाप्रेमियों को विमुग्ध तथा विस्मयाभिभूत कर रही थी, जिसके जादुई आकर्षण में बँधकर अंग्रेज कवि येट्स ने इसे 'सुप्रीम कल्चर' वाली महान् कृति घोषित किया था, उसमें प्रवाहित होनेवाली विचारों की विश्व को आज उतनी ही आवश्यकता है जितनी शताब्दी पहले थी।

रवीन्द्र ने एक स्वप्न देखा था कि विश्व का हर मानव निर्भय बन जाए, उनकी कामना थी कि हर व्यक्ति भय-शून्य चित्त के साथ रहे। भय से मुक्ति को ही रवीन्द्र ने अपने कविता में 'दिव्य स्वतंत्रता' कहा है।

'गीतांजलि' की एक कविता मानव के एक ऐसे आदर्श का 'मॉडल' प्रस्तुत करती है जिसमें हर व्यक्ति निर्भय है। किसी को किसी से डर नहीं। एक ऐसी सृष्टि, जिसमें न तो मानव को प्रकृति का भय है, न तन के कष्टों का और न सम्बन्ध का भय है। इसका अर्थ यह नहीं कि मानव उदण्ड हो जाए और जो मन में आए वह करने लग जाए, अपितु इसके पीछे मूल शक्तिशाली आधार है मानव का मानव से प्रेम और मानव का यह

प्रेम ही अपने उद्घात रूप में ईश्वरीय प्रेम में तब्दील हो जाता है।

रवि ठाकुर ने अतीत के गौरव के गीत गाने और वर्तमान की दयनीय दशा पर आँसू बहाने तक ही अपने को सीमित नहीं रखा, उनकी दृष्टि भविष्य के क्षितिज को भेदकर उससे आगे बढ़ रही थी। रवीन्द्र उन्नत मानव-महिमा का स्वर्ग चाहते हैं, ऐसा स्वर्ग जिसमें देशवासियों के मन से यह भय निकल जाए जो शताब्दियों से उसकी समस्त चेतनाओं को आवृत्त किए हुए है।⁶

रवीन्द्रनाथ के विचार में “जहाँ चित्त भय-शून्य है, जहाँ मस्तक सदा ऊँचा रहता है, ज्ञान जहाँ बन्धनमुक्त है, जहाँ घर की दीवार दिन-रात अपने आँगन में वसुधा को खंड-खंड रूप में विभक्त किए हुए नहीं है, जहाँ वाक्य हृदय के मूल झरने से उच्छ्वासित हो उठता है, जहाँ निरंतर अप्रतिहत रूप से कर्मधारा प्रवाहित होती हुई देश-देश तथा दिशा-दिशा को आप्लावित करती हुई सहस्र रूपों में चरितार्थता प्राप्त करती है; जहाँ तुच्छ रीति-रस्मों की सिकता विचारों के स्रोत को रोककर व्यक्ति के पौरुष के सैंकड़ों टुकड़ों, नहीं कर डालती, जहाँ तुम्हीं सब कामों के और विचारों के नेता हो; हे पिता, इसी स्वर्ग में इस देश की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से तुम अपने हाथ से उस पर निर्दय आघात करो।”⁷

जिस भय मुक्त देश की रवीन्द्र ने कामना की थी वह अभी तक पूरी नहीं हुई है। इसके विपरीत वर्तमान समय व्यक्ति भय के शिकंजे में फँसा हर दिन त्रस्त रहता है। आतंकवाद विश्व-व्यापी समस्या बनकर हमारे सिर पर मंडरा रहा है, अमेरिका जैसा शक्ति सम्पन्न देश भी 9/11 के बाद हिल गया, भारत में अजमल कसाब और उसके आतंकी साथियों द्वारा किया गया खौफनाक नर-संहार दिल दहलाने वाला था। नक्सलवाद का भय और जाति-पाँत के आधार पर होने वाला खून-खराबा भी त्रस्त करता है, परमाणु और रसायनिक हथियारों के प्रयोग का भय भी विद्यमान रहता है। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का भय भी एक प्रकार का भय है। यहाँ तक कि बच्चों की स्कूल जाने में भय लगता है। इस समस्या की गंभीरता को देखते हुए ही शिक्षा दिवस, 08.09.2010 की देश के प्रधानमंत्री की यह बात कहनी पड़ी कि ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाए जिससे बच्चे स्कूल जाने से खौफज़दा न हों।

वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, व्यवसायीकरण, प्रगति और विकास के नाम पर जिस गलाकाट प्रतिस्पर्धा की तीन टंगी दौड़ में मानव एक दूसरे को पीछे छोड़ने की चाह में अंधा-धुंध दौड़ रहा है उस दौड़ का अंत केवल एक क्राइसिस (Crises) बनकर रह गया है। भय का कारण यह है कि मानव अपने ‘स्व’ से दूर हो गया है, प्रकृति से दूर हो गया है और सुख व आनन्द के स्रोत, प्रभु से दूर हो गया।

इस संबंध में रवीन्द्रनाथ टैगोर का निम्नलिखित मत विचारणीय है, “प्रतियोगिता के संघर्ष-क्षेत्र में स्वतंत्रता की जो विजय-चेष्टा होती है उस पर ही आजकल ध्यान दिया गया है। डार्विन का ‘प्राकृतिक निर्वाचन सिद्धान्त’ ऐसे ही युद्धक्षेत्र का सिद्धान्त है, जिसमें कोई किसी पर दया नहीं करता और सभी ‘सबसे बड़ा’ होना चाहते हैं। किन्तु कोपाटकिन आदि आधुनिक वैज्ञानिकों ने एक दूसरा दृष्टिकोण भी सामने रखा है। उनका कहना है कि एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा, अपने को बनाये रखने की चेष्टा, प्राणी समाज का एकमात्र प्रयास नहीं है। परस्पर सहयोग और सामूहिक जीवन की इच्छा दूसरों को धक्का देकर ऊपर उठने की इच्छा से कम प्रबल नहीं है। अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करके एक-दूसरे की सहायता करने की इच्छा ही प्राणी-जागत में उन्नति का उपाय है। इस तरह हम देखते हैं कि एक ओर प्रत्येक की स्वातन्त्र्यस्फूर्ति और दूसरी ओर समग्र के साथ सामंजस्य, ये दोनों नीतियाँ साथ-साथ काम करती रही हैं। अहंकार और प्रेम, आकर्षण और विमुखता, दोनों मिलकर सृष्टि की रचना करते आए हैं।⁸ सूर्य और चन्द्र नियम से उदय और अस्त हाते हैं।⁹ ऐसा लगता है वे भयभीत हैं कि कहीं पलभर की देर ना हो जाए स्वयं मृत्यु - जिसका काम बन्धन तोड़ना है, जिसका अपना भी कोई बन्धन है, ऐसा हम सोच भी नहीं सकते - वह भी भयभीत होकर नियम का पालन करती है। हम देखते हैं कि सब-कुछ भय से ही चलित है, कहीं कोई व्यवधान नहीं। तो फिर आनन्द की बात कैसे उठती है? जिस कारखाने में शुरु से आखिर तक यंत्र चलते हैं वहाँ आनन्द का दरबार लगाने का पागलपन कोई नहीं करेगा। लेकिन बांसुरी से जब आनन्द का स्वर निकलता है तो उसे अस्वीकार नहीं कर सकता।¹⁰ इसीलिए कवि की ‘चित्त जेथा भय शून्य’ कविता में प्रभु से दिव्य स्वतंत्रता की कामना की गई है। जब मानव

स्वातंत्र्य में पूर्णता प्राप्त करने के साथ मिलन में अपना समर्पण भी करता रहे तभी उसका जीवन सार्थक होता है। अर्जन में हमारी प्रतिपूर्ति है, वर्जन में हमारा आनंद है।¹¹

गीतांजलि में स्वयं को प्रभु के चरणों में समर्पित करने का भाव बार-बार उभर कर सामने आता है। अपने वातायन में बसंत को उच्छ्वास भरते देख और आँगन में भँवरों का मधुर गुंजन कवि को अपना जीवन समर्पण करने की प्रेरणा देता है।¹² इसे मुरली के उदाहरण से रवीन्द्र इस प्रकार स्पष्ट करते हैं, 'हे प्रभु, तुम अपनी मुरली के समान मेरे जीवन को सहज और सरल बना दो, इसके सब छिद्रों में तुम अपने संगीत के स्वर भर दो।'¹³ अपने अहंकार को निःशेष करके ईश्वर को अर्पित कर देने में ही चरम आनंद है।¹⁴ इस चरम आनंद में अलंकार विघ्न न बन जाए इसलिए कवि साज-सज्जा के अहंकार से मुक्त होने के लिए अपनी कविता के सभी अलंकार उतार देता है।¹⁵ अपनी विषय वासनाओं का पूर्ण विसर्जन कवि का ध्येय है क्योंकि उसकी वासना जिसका स्पर्श करती है, उसका प्रकाश पल भर में बुझा देती है इसलिए रवीन्द्र कहते हैं कि अब मैं यह बोझ अपने ही कंधों पर नहीं ढोऊँगा बल्कि इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर दूँगा।¹⁶

इस समर्पण में मन में जो उथल-पुथल मचती है, मन में जो दुविधा पैदा होती है वह उनकी निम्नलिखित कविता में उजागर हुई है: मुझे बाधाओं ने जकड़ रखा है। छुड़ाना चाहता हूँ। छुड़ाने में व्यथा होती है मुक्ति की चाह लिए तुम्हारे पास आता हूँ। माँगने में लज्जा से भर जाता हूँ। जानता हूँ तुम मेरे जीवन की श्रेष्ठतम निधि हो, ऐसा कोई धन नहीं है जो तुम्हारे सम हो, फिर भी घर की टूटी-फूटी वस्तुओं को फेंक नहीं पाता हूँ। मेरे हृदय पर पड़े हुए धूलि मिट्टी के आवरणों ने तुम्हें ढक रखा है, वह मृत्यु से परिपूर्ण है। यद्यपि मैं उन आवरणों के प्रति प्राणयन से दृष्टि रखता हूँ। फिर भी उनमें लिप्त रहना मुझे अच्छा लगता है। मैं अनेक ऋणों, प्रवंचनाओं एवं विफलताओं में पड़ा हुआ हूँ, परन्तु फिर भी जब तुम्हारे निकट कल्याण की प्रार्थना करने जाता हूँ, तब मेरे मन में भय समा जाता है।¹⁷ समर्पण करने में दूसरी सबसे बड़ी बाधा व्यक्ति के उन बंधनों की है जिसे उसने स्वयं निर्मित किया था। इन बंधनों के निर्माण का लक्ष्य संसार की हर वस्तु पर अपना शिकंजा कस कर उसे अपने अधीन करना था। इस प्रयास में मानव ने जो बंधन की मोटी-मोटी जंजीरें ईजाद की है उन जंजीरों के बंधन में वह स्वयं ही बँध जाता है। रवीन्द्र इसी दशा को 'बंदी' शीर्षक कविता में निम्नलिखित ढंग से व्यक्त करते हैं: 'हे बंदी! वज्ररूपी बंधन को किसने गढ़ा है? बंदी ने कहा- 'मैंने स्वयं इसे बड़े ही यत्न से गढ़ा था। तब मैंने यह सोचा था कि मैं अपने प्रताप से संसार को अपना ग्रास बना लूँगा। मैं अकेला स्वाधीन रहूँगा तथा अन्य सब मेरे दास होंगे। इसीलिए मैं दिन रात इसे लुहार की भट्टी में गढ़ता रहा। कितने परिश्रम और कितने आघातों से इसे तैयार किया; उसका कोई ठिकाना नहीं है। जब इस अत्यंत कठिन तथा कठोर जंजीर की गढ़न समाप्त हुई, तब मैंने देखा कि मैं स्वयं ही इस जंजीर में बंध गया हूँ।'¹⁸ इन बंधनों में एक बन्धन अपने नाम के अहंकार का है। रवीन्द्र के अनुसार, "मिट्टी पर मिट्टी जमा कर जितना ही मैं अपने नाम की दीवार को आकाश की ओर ऊँचा उठाता हूँ, उतना ही मैं अपने सत्य को खोता जा रहा हूँ।"¹⁹ अपने प्रयत्न से मिलने के लिए जब कभी अकेला चलता है तब भी वह अपने 'अहंकार- से पीछा नहीं छोड़ा सकता इसीलिए वह पुकार उठता है- "हे प्रभु! वह मेरा 'मैं' है। उसे लज्जा तो कभी छू तक नहीं गई है। परन्तु उसे साथ लेकर तुम्हारे द्वार तक जाने में मुझे बड़ी लज्जा लग रही है।"²⁰ इसलिए कवि अपने अन्दर केवल इतना ही 'अहं' शेष रखना चाहता है जिसके द्वारा वह प्रभु को अपना स्वामी बनाए रख सके।²¹ रवीन्द्र का यह विचार यीट्स के (Yeats) निम्नलिखित मत द्वारा पुष्ट हो जाता है- पुनर्जागरण काल से यूरोपीय संतों के लेखन ने अपनी अत्यंत परिचित अलंकारिकता और सामान्य विचार विन्यास के बावजूद हमारा ध्यान आकृष्ट करना समाप्त कर दिया है, हम जानते हैं कि हमें अंततः इस संसार का त्याग करना चाहिए और हम अपनी थकान अथवा उल्लास के क्षणों के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हम स्वयं होकर सांसारिकता के त्याग की बात नहीं सोचते, और फिर हम लोग, जिन्होंने इतना अधिक काव्य पढ़ा है, इतनी सारी पेटिंग्स देखी है, इतना सारा संगीत सुना है जिसमें देह और आत्मा की पुकार एक ही जैसी होती है, इस सांसारिकता का इतनी कठोरता के साथ त्याग कैसे कर सकते हैं? हम भी सांसारिकता का त्याग कर सकते हैं।²² इसके लिए रवीन्द्र निम्नलिखित कविता में अलविदा चाहते हैं-

"मुझे छुट्टी मिल गई, अब विदा दो। हे भाई ! मैं सबको प्रणाम करके जा रहा हूँ। मैं दरवाजे की

चाभी लौटा रहा हूँ; अब इस घर को और बन्द करके नहीं रखूँगा। आज मैं सबके आशीर्वचन चाहता हूँ। बहुत दिनों तक हम पड़ोसी रहे। मैंने जितना दिया, उससे अधिक ले चुका हूँ। अब रात्रि बीत गई, सबेरा हो चुका है। दीपक की बत्ती भी बुझ गई। बुलावा आ चुका है, इसलिये मैं चला जा रहा हूँ।”²³

गीतांजलि के अनेक गीतों में विश्वात्मा से वियुक्त आत्मा की अपने पुरातन विराटरूप से एकाकार होने की उत्कट आकांक्षा है। उस विश्वात्मा के चरणों में अपने को समर्पित करने के लिए ही कवि ने गीतों का आश्रय लिया है।²⁴ “हे प्रभु! अनेकों स्वर्णों की आकुल धाराओं को एक ही में आत्मसात् कर, एक ही नमस्कार में, केवल एक ही नमस्कार में, मेरा सम्पूर्ण गीत नीरवता के पारावार में समाप्त जो जाये। हे प्रभु! जिस प्रकार हंस मानसरोवर का पथिक है; उसी प्रकार दिन-रात एक ही नमस्कार में, केवल एक ही नमस्कार में, मेरे सम्पूर्ण प्राण महामरण के पार उड़ते चले जायें।”²⁵

स्पष्टतः रवीन्द्र मृत्यु के बीच आनन्द दूढ़ते हैं क्योंकि निरन्तर गति के लिए निरन्तर आत्मदान की जरूरत है अपने-आपको महा-अज्ञात के चरणों में निःशेष भाव से उलीच देने का नाम ही पूर्णता है।²⁶

‘गीतांजलि’ का सबसे अधिक आकर्षण कवि का प्रेम भाव है जिसमें कवि यीट्स को भी अपनी छवि दिखाई पड़ती है वह गीतांजलि की भूमिका में लिखते हैं, हम इसके अजनबीपन से प्रभावित नहीं होते, बल्कि इस बात से प्रभावित होते हैं कि हम अपनी ही छवि से मिले हैं, मानो हम रोसेरी के जंगल से गुजर रहे हैं या फिर शायद पहली बार साहित्य में अपनी आवाज को सुन रहे हैं, जैसे सपने में सुनते हैं।²⁷

रवीन्द्र की गीतांजलि के इन गीतों के प्रथम स्पर्श से ही साधारण से साधारण, शुष्क से शुष्क मनुष्य का हृदय भी अलौकिक आनन्द से पुलकित हो जाता है।²⁸ इसका कारण यह है कि ‘गीतांजलि’ के प्रेमगीत प्रभु के अमृतस्पर्श से परम आनन्दित होकर कवि के असीम हृदय से अनिर्वचनीय बोल के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं।²⁹ गीतांजलि के इन गीतों की विवेचना के लिए दुनिया के किसी भी साहित्य के आलोचना सिद्धान्तों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह गीत स्वतः ही सीधे-सीधे दिल में उतर जाते हैं जिसके कुछ निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है:

1. तुम केवल क्षण भर के लिए मुझे अपने पास बैठ लेने दो।³⁰
2. संसार के आनंद यज्ञ में सम्मिलित होने का निमंत्रण पाकर मेरा मानव-जीवन धन्य-धन्य हो गया।³¹
3. मैं प्रेम के हाथों ही सर्वस्व समर्पित होना चाहता हूँ।³²
4. आज इस तूफानी रात में तुमसे अभिसार करना है। आकाश हताश प्रेमी के समान आहें भर रहा है। मेरे आँखों में नींद नहीं है। हे प्रियतम! मैं द्वार खोलकर तुम्हारी रह-रह कर प्रतीक्षा कर रहा हूँ।³³
5. उषापान के समान अपने अधरामृत द्वारा मेरी प्यास बुझा दो।³⁴
6. मैं तुम्हें पुकारूँ- जो मेरी खुशी में आता है करता रहता हूँ; परन्तु तुम्हारी खुशी सदैव मेरी खुशी की आश लगाये रहती है।³⁵
7. ‘मैं चाहता हूँ; मैं तुम्हें चाहता हूँ- मेरा मन सदैव इन्हीं शब्दों को कह रहा है। अन्य जिन किन्हीं वासनाओं में पड़कर मैं दिन-रात भटक रहा हूँ, वे मिथ्या हैं, सब मिथ्या हैं। अरे, ओ! मैं तुम्हें को चाहता हूँ।³⁶
8. मैं घास के आसन पर बैठकर दूर क्षितिज की ओर अपनी दृष्टि गड़ाये हूँ। तुम न जाने किस समय आ जाओ- आशा में अपना हृदय बहला रहा हूँ।³⁷
9. यह निश्चय हुआ था कि केवल तुम और मैं - एक नौका पर बैठकर निरुद्देश्य चल पड़ेंगे।³⁸
10. अरे ओ, यह मेरी भली, गम्भीर और अचेतन निद्रा तभी भंग होना चाहती है, जब वह अपने स्पर्श से मुझे जगावे।³⁹
11. तुम अपने हाथों में वरमाला लिये नीचे उतर आये। हे नाथ! तुम मेरे निर्जन घर के द्वार पर ठिठक कर खड़े हो गये हो।⁴⁰
12. तुम्हारा आनन्द मेरे ऊपर निर्भर है। तुम मुझसे मिलने के लिए नीचे आ गये हो। हे त्रिभुवनेश्वर! यदि मैं न होता तो तुम्हारा प्रेम मिथ्या हो जाता। मुझे साथ लेकर ही तुमने यह मेला लगाया है। मेरे हृदय में तुम रसमय खेल रहे हो। मेरे जीवन ने विचित्र रूप धारण कर लिया है, उसमें तुम्हारी इच्छाएँ तरंग के समान उठ रही हैं। हे प्रभु! इसीलिये तो तुम राजाओं के राजा होकर भी मेरे हृदय में नित्य मनोहर स्वरूप धरण कर सचेष्ट हो, धूमते रहते हो।⁴¹
13. अरे, ओ चितचोर! यह तुम्हारा प्रेम ही है जो पत्ते-पत्ते में स्वर्णिम प्रकाश भर कर नाच रहा है। यह जो मधुर आलस्य से भरे हुए बादल आकाश पर उड़ते चले जा रहे हैं और यह जो शरीर पर अमृत-सिंचन करती हुई वायु चल रही है, अरे ओ, चितचोर! यह सब तुम्हारा प्रेम ही है। प्रातः कालीन प्रकाश धरा में मेरे नेत्र तैर रहे हैं और तुम्हारे प्रेम की वाणी प्राणों में भर रही है। तुम्हारा मुख जब नीचे मेरे मुख की ओर झुका तो

परस्पर नेत्र मिल गये।⁴² 14. हे मेरे देवता! तुम मेरे इस शरीर एवं प्राण में कौन-सा अमृत भरकर पीना चाहते हो?⁴³ 15. तुम्हीं एक आधारमय आकाश हो, तुम्हीं नीड़ हो। हे सुन्दर! यह नीड़ तुम्हारे प्रेम से घना हो रहा है।⁴⁴

यह प्रेम ही रवीन्द्र की सहज उपासना के केन्द्र में है। उसमें वैष्णव आचार्यों की दस दशाओं की नकल नहीं है और ना ही ईसाई संतों की। प्रेम की यह सहज साधना कवि की आत्मानुभूति है। रवीन्द्र के प्रभु प्रेम की इस धारा में नवीनता यह है कि वह सांसारि व्यक्तियों के प्रेम की तरह उसे कठिन बंधन में बाँध कर नहीं रखते बल्कि पूर्णतः मुक्त रख कर स्वयं छिप जाते हैं, इसीलिए उनका प्रेम बड़ा है।⁴⁵ इस संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह मत महत्वपूर्ण है:- 'यदि आप विशुद्ध ज्ञान और विशुद्ध प्रेम के महिमामय संयोग का रस लेना जानते हों तो इसमें रहस्य का दुर्भेद्य जाल तो मिलेगा ही नहीं, किन्तु एक अत्यन्त सरस मार्मिक भावना मिलेगी, जो रवीन्द्रनाथ की कविता की जान है, जो इतःपूर्व बहुत ही कम देखने को मिलती है। रवीन्द्रनाथ यहाँ पर प्राचीन वैष्णव-कवियों से अलग हो जाते हैं। नहीं कह सकते, दोनों में कौन अधिक सरस है- हमें दोनों ही आनन्द देते हैं, पर रवीन्द्रनाथ की इस नवीनता ने आज की इस सन्देह परायण दुनिया को प्रेम का पागल बना दिया।'⁴⁶

'गीतांजलि' की कविता उस स्थान पर पहुँच गई है, जहाँ मिलन और विरह में लकीर खींचना मुश्किल हो जाता है।⁴⁷ कवि की ध्वनि मिलन और विरह दोनों के एक ही करुण स्वर में किस प्रकार बज उठी है- वह तो नजदीक आया था तो भी मैं नहीं जगी-“से-जे पारो एसे छिल, तबू जागिनि।⁴⁸

गीतांजलि में अभिव्यक्त प्रेम की परिणति आनन्द में होती है। रवीन्द्र कहते हैं- “मुझे इस प्रतीक्षा में ही आनन्द आता है। यह धूप-छाँव के साथ यो ही खेलती रहे तथा वर्षा बसन्त की अनुगामिनी बनी रहे। इस बंधन की कारा में भी मेरे समाचार लेकर मन्द पवन अपने हृदय में प्रसन्न होती हुई बह रही है। मैं सारे दिन दृष्टि लगाये हुए इस द्वार पर अकेला बैठा रहता हूँ कि जिस समय वह शुभ अचानक आयेगा; तब मैं उसे देखूँगा। तब तक मैं प्रति पल हँसता हुआ मन ही मन गाता रहता हूँ। उस समय रह-रह कर दिशाएँ भी सुगंध से भर उठती हैं।”⁴⁹

कवि को प्रकृति भी आनन्दित करती है- “मैं पक्षियों के गीत, वंशी की तान तथा पल्लवों की कम्पन के अगाध तथा गौरवहीन आनन्द में ही मग्न हो रहा हूँ। मैंने अपने मुग्ध शरीर को धरती की गोद में सौंप दिया है। बाँस की छाया का कौतुक मेरी आखों में नाच रहा है। आम के बौर की सुगन्धि मुझे मस्त बना दे रही है। मैं आँखे बन्द करके मधुमक्खी की गुञ्जन क्रीड़ा का अनुभव कर रहा हूँ। इस घने हरियाले उपवन ने मेरे प्राणों को आत्मसात्-सा कर लिया है। अब यह भूल गया हूँ कि मैं किस अभिप्राय से मार्ग पर बाहर निकला था। मैंने अपनी चेतना को छाया, गन्ध और गीतों पर न्योछावर कर दिया है। मेरा शरीर धीरे-धीरे कब अवश (ढीला) हो गया यह भी तो मैं नहीं जानता। अन्त में, गहरी नींद के बीच ही जब मेरे आँख खुल गई, तब मैंने देखा कि तुम न जाने कब से मेरे सिराहने आकर खड़े हो गये हो। तुम्हारी मुस्कुराहट ने मेरी अचेतनता को नष्ट कर दिया है।”⁵⁰

इतना ही नहीं उस ईश्वर का आनन्द भी कवि के आनन्द पर आश्रित हैं। रवीन्द्र पूर्ण निश्चय के साथ कहते हैं- “तुम्हारा आनन्द मेरे ऊपर निर्भर है। तुम मुझसे मिलने के लिये नीचे आ गये हो है त्रिभुवनेश्वर ! यदि मैं न होता तो तुम्हारा प्रेम मिथ्या हो जाता।”⁵¹ यह आनन्द प्रकाश के रूप में कवि के नयनों में हृदय में और प्राणों में नृत्य करता है। इसी प्रकाश में आकाश जग उठता है, वायु चल पड़ती है, सम्पूर्ण पृथ्वी हँसने लगती है। सहस्रों तितलियाँ उड़ने लगती हैं, मल्लिका और मालती के पुष्प नाच उठते हैं, पत्ता-पत्ता हंसने लगता है, चारों ओर प्रसन्नता निखर जाती है। इस अमृत निर्झर के प्रवाह में सुरसरिता के किनारे डूब जाते हैं।⁵² और गीतांजलि के गीतों में रवीन्द्र इसी आनन्द की कामना करते हैं।

आत्मा के साथ परमात्मा को देखना रवीन्द्र की सहज दृष्टि है। यह वैसी ही दृष्टि है जैसे चक्षु सहज ही उस पदार्थ को देखता है, जो आकाश में फैला हुआ है। हमारी आँखें किसी चीज को टुकड़े-टुकड़े करके नहीं देखती, समग्र रूप में देखती है। वह अपने बीच समग्रता को बाँध कर, सम्पूर्णता को अपनाकर देखना जानती हैं। जब हमारे आत्मबोध की दृष्टि उन्मुक्त होती है तब वह भी इसी तरह सहज भाव से अपने को 'एक'

करके और परम 'एक' के साथ आनन्द में सम्मिलित करके देखती है। रवीन्द्र यह मानते हैं कि परमात्मा हमारा 'अपना' है। यदि उसे अपना समझ कर नहीं जाना तो फिर अन्य किसी तरह से भी हम जाने, हम उसको नहीं जान सकते। उस परम् सत्ता की अभिव्यक्ति की रवीन्द्र आकाश में भी देखते हैं और नीड़ में भी। वे लिखते हैं- "तुम्हीं एक आधारमय आकाश हो, तुम्हीं नीड़ (घोंसला) हो। हे सुन्दर! यह नीड़ तुम्हारे प्रेम से घना हो रहा है। प्रतिक्षण अनेकों वर्ण, गन्ध तथा गीत इसे चारो ओर से मुध किये हुए हैं। वह उषा अपने दाहिने हाथ में स्वर्ण का थाल रखे तथा एक अनुपम माधुर्य माला को लिये हुए यहाँ आती है और पृथ्वी ललाट पर उसे चुपचाप रख देती है। गायों से शून्य निर्जन पथ पर सन्ध्या भी नीचा मुख किये हुए आती है। उसके हाथों में स्वर्ण कलश रहता है। जिसमें पश्चिमी समुद्र का शान्ति-जल भरा रहता है। परन्तु जहाँ तुम मेरी आत्मा के आकाश में विराजमान हो वह क्षेत्र अपार विस्तार वाला है, वहाँ सब कुछ श्वेत ही दिखाई देता है। वहाँ न दिन है, न रात्रि न मनुष्य हैं और न अन्य प्राणी। वहाँ वर्ण, गन्ध तथा वाणी- कुछ भी नहीं है।"⁵³

रवीन्द्र अनुभव करते हैं कि उनकी चेतना और वेदना उस असीम का गम्भीर स्पर्श कर रही है और वही आनन्दित होकर सुख:-दुःख अथवा हर्ष के तरानों को जगाता है। सुनहले, रूपहले, हरे नीले रंगों में वहीं इस मायाजाल को बुनता है तथा वही अपने उन चरणों को बढ़ा कर यहाँ रख देता है, जिनके स्पर्श से कवि आत्मविस्मृत हो जाता है।⁵⁴

अब यहाँ यह सवाल उत्पन्न होता है कि आज के 'हाईटेक' युग में 'माऊस' क्लिक पर उंगली रखे उत्तरआधुनिकता के युग में वायु प्रदूषण में ऑक्सीजन ढूँढ़ता, बहुसंस्कृति में अपनी पहचान तलाशता हुआ व्यक्ति इन अनुभूतियों को सहजता से प्राप्त कर सकता है अथवा नहीं? इसका सीधा सा उत्तर है - हाँ, कर सकता है यदि वह गीतांजलि के गीतों को पढ़ने के लिए अवकाश निकाले। रवीन्द्र ने 'गीतांजलि' में तीन कविताएँ बच्चों पर लिखी हैं। इन कविताओं के माध्यम से रवीन्द्र यह बताना चाहते हैं कि ईश्वरीय प्रेम की अलौकिकता, माधुर्य और अतीन्द्रिय सुख को अनुभव करने के लिए बालकों जैसा भोलापन चाहिए। रवीन्द्र लिखते हैं- "संसार रूपी अपार समुद्र के तट पर बालक खेल रहे हैं। न तो वे तैरना जानते हैं और न जाल फेंकना ही जानते हैं। सौदागर लोग अपनी नाव पर बैठकर मोती पाने के लिये समुद्र में डुबकी लगाते हैं परन्तु बालक तो केवल कौड़ियाँ इकट्ठी करके उन्हें फिर बिखेर देते हैं। वे रत्नों अथवा धन की खोज नहीं करते। उन्हें जाल फेंकना नहीं आता। सागर अपनी फेनिल हँसी हँस उठता है। समुद्र की लहरें भी हँसने लगती हैं। भीषण तूफान अपनी तीक्ष्ण तान बालकों के कानों में गूँजा देता है। जिस प्रकार माता शिशु को पालने में लिया कर उसे सुलाती है; उसी प्रकार समुद्र बालकों के साथ खेल रहा है तथा समुद्र की तरंगें हँस रही हैं।"⁵⁵

मुक्ति के संबंध में रवीन्द्र नाथ का विचार है कि मानव आत्मा कर्म द्वारा ही अपने भीतर से अपने आप को मुक्त करती है, यदि ऐसा न होता तो वह इच्छापूर्वक कभी कर्म न करता। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- "रवीन्द्रनाथ उन साधकों में नहीं हैं जो बन्धन से घृणा करते हैं। सीमा को वे असीम की अभिव्यक्ति का साधन समझते हैं। उन्होंने बहुत बार कहा है कि सीमा उस फारक की भाँति है जिसका प्रयोजन है भीतर की ओर का मार्ग बताना।"⁵⁶ रवीन्द्रनाथ लिखते हैं- "वैराग्य साधनों में जो मुक्ति मिलती है- वह मेरे लिये नहीं है। मैं तो असंख्य बन्धनों के बीच अत्यन्त आनंदमयी मुक्ति का स्वाद प्राप्त करूँगा। मैं इस पृथ्वी के मृतकपात्रों को बारम्बार भरूँगा तथा उनमें अनेक रंग एवं गंधमय अमृत को सदैव ढालता रहूँगा। मैं दीपक की भाँति सम्पूर्ण संसार में अपनी लाखों बलियों को जलाकर, तुम्हारे मंदिर में तुम्हारी ही शिखा से प्रकाश फैलाऊँगा। इंद्रियों के द्वार योगासन के द्वारा बंद किए जाएँ, यह मेरे लिए स्वीकार नहीं है। दृश्य, गंध तथा गान में जो कुछ आनंद है, उन सब में तुम्हारा आनंद भरा रहेगा।"⁵⁷ हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के मत में "भजन, पूजन, साधना, आराधना - जैसे पवित्र नामों की खाल ओढ़कर भी मनुष्य ने मनुष्य के अपमान का आयोजन किया है रवीन्द्र नाथ ने बार-बार इसका विरोध किया है।"⁵⁸

रवीन्द्र के विचार में - "भजन, पूजन, साधना, आराधना - इन सबको पड़ा रहने दो। द्वार बंद देवालय के कोने में- जहाँ कोई नहीं है, अंधकार में अपने मन को छिपाये हुए तू किसको पूजता है? तू आँखे खोलकर देख, देवता मंदिर में नहीं है। जहाँ कृषक खेती कर रहे हैं तथा मजदूर बारहों महीने पत्थर तोड़कर मार्ग बना रहे

हैं, चाहे घोर वर्षा हो अथवा कड़कती धूप हो, वे उन्हीं के बीच उपस्थित रहते हैं। उनके दोनों हाथ मिट्टी से सने हुये हैं। तू भी उन्हीं के समान इन पवित्र वस्त्रों को उतार कर उसी धूल मिट्टी में रम जा। मुक्ति ? और मुक्ति कहाँ मिलेगी ? मुक्ति कहाँ है ? अपने प्रभु भी सृष्टि बंधन में पड़े हुए हैं। वे स्वयं सभी के साथ बंध गए हैं। यह ध्यान और फूलों की डाली पड़ी रहने दो। वस्त्र फट जाएं अथवा मिट्टी में सन जाएँ, इसकी चिन्ता मत कर। तू भी कर्मयोग में उनके साथ रहकर अपना पसीना बहा।⁵⁹ रवीन्द्र के गीत दिव्य भावनाओं से भरे हुए हैं, फिर भी, उनमें ऐसी मानवता है कि साधारण मनुष्य भी उन गीतों में अपने हृदय की झंकार सुन सकता है।⁶⁰

वर्तमान समय के साहित्य में दलित-विमर्श का बहुत बोल-बाला है, परन्तु शताब्दी पहले रवीन्द्रनाथ का हृदय भी समाज के दलित वर्ग के लिए पसीजा था। “धर्म का अधिकार” निबंध में रवीन्द्र ने अपने अनुभव को इस प्रकार व्यक्त किया है: “मैंने गाँव में स्वयं देखा है कि शूद्रों के खेत में अन्य जाति के लोग काम नहीं करते, उनका धान नहीं काटते, उनका घर नहीं बनाते। अर्थात् पृथ्वी पर रहने के लिए एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से जिस सहयोगिता की अपेक्षा रख सकता है उसके योग्य हमारा समाज इन शूद्रों को नहीं समझता। बिना किसी दोष के हम इनकी जीवन यात्रा को दुःसह और दुरुह बनाते हैं और जन्म से मृत्यु तक उन्हें दंड देते रहते हैं। मनुष्य पर इस तरह अकारण अत्याचार करना क्या हमारे लिये स्वभाव सिद्ध बात है? जिन लोगों से हम यथेष्ट मात्रा में सेवा और सहायता लेने में नहीं हिचकते उन्हें सब प्रकार की सहायता से वंचित करना - इस बात को क्या हमारी न्याय बुद्धि सत्य संगत कह सकती है? कदापि नहीं।⁶¹ अपनी कविता में रवीन्द्र साफ तौर पर यह घोषणा कर देते हैं। कि प्रभु चरण वहाँ विराजमान हैं जहाँ नीच दीनों से भी दीन, सर्वस्वहीनों का निवास है।⁶² इसलिए प्रभु के चरणों को स्पर्श करने से पूर्व दलितों को स्पर्शणीय बनाना होगा। गीतांजलि को समझने के लिए कवि यीट्स (Yeats) का निम्नलिखित मत महत्वपूर्ण है।

“We write long books where no page perhaps any quality to make writing a pleasure, being confident in some general design, just as we fight and make money and fill our heads with politics - all dull things in the doing - while Mr. Tagore, like the Indian civilisation itself, has been content to discover the soul and surrender himself to its sportaneity... An innocense, a simplicity that one does not find elsewhere in literature makes the birds and the leaves seem as near to him as they are near to childrens and the changes of the seasons great events as before our thoughts has arisen between them and us”⁶³

गीतांजलि की कविताएँ स्वतःसिद्ध हैं, इनके अध्ययन के लिए समीक्षा-शास्त्र की आवश्यकता नहीं है, ये कविताएँ सीधे- सीधे मानव हृदय में उतर जाती हैं और मानव हृदय को मानव के साथ, प्रकृति के साथ और परम-सत्ता के साथ जोड़कर विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त्र करती हैं। अपवित्रता एवं अन्य मनोविकारों में फँसकर आज का मानव अपनी जिस शांति की संस्कृति से दूर होता चला जा रहा है, इच्छाओं और कामनाओं के बेलगाम घोड़े पर सवार मानव सरपट भागा जा रहा है, उसके लिए गीतांजलि की कविताएँ सुकून प्रदान करने वाली इन्सटॉट औषधि का काम कर सकती हैं। अहम् और वहम का शिकार बन गए व्यक्ति को ‘गीतांजलि’ रहम करना सिखाती है। गीतांजलि के दर्पण में कोई भी व्यक्ति अपने निजत्व को निहार सकता है। गीतांजलि में रवीन्द्र प्रभु के साथ प्रीति करनी सिखाते हैं जिसमें माधुर्य है, सौन्दर्य है और सम्पूर्ण विश्व के लिए मंगल कामना है। इसमें यह साफ तौर पर स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर के साथ नाता जोड़ने के लिए, उसके प्रेम में डूब जाने के लिए, उसके सामीप्य के आनंद की अनुभूति के लिए वैराग्य के साधनों-भजन, पूजन, साधना, आराधना-के आडम्बर रखने की आवश्यकता नहीं है, अपितु पवित्रता और दिल में स्नेह की आवश्यकता है। जाति-पाँति का भेद मिटा कर दीनों और दलितों, अधमों से भी अधम समझे जाने वालों को सीने से लगाना होगा क्योंकि भगवान का निवास उन्हीं के चरणों में है। दूसरी बात ‘कर्मयोग’ को छोड़कर प्रभु-प्राप्ति और मुक्ति सभी साधन व्यर्थ हैं। गीतांजलि के गीत बुझे हुए और उलझनों में घिरे हुए मानव के मुझाँए मन को आनंद से भाव विभोर कर देते हैं, मानव की हृदय तंत्री इन गीतों की भाव लहरी के साथ नाच उठती है। मन मयूर नाच उठता है, प्राणवान हो जाता है। एक अद्भुत आशा और अटूट निश्चय जन्म लेता है। गीतांजलि भारतीय विराट् संस्कृति की प्रतीक पुस्तक है।

1. निराला रचनावली, खंड-5, दिल्ली : राजकमल (1983) पृ0 19.
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-8 दिल्ली : राजकमल (1998), पृ 315
3. पूर्वोक्त, पृ0 340
4. निराला रचनावली, खंड-5, दिल्ली : राजकमल (1983) पृ0 108
5. Yeats, W. B., Introduction, Gitanjali
6. मिश्र उमेशचन्द्र, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ, इलाहाबाद : इंडियन प्रेस (1943) पृ0 170
7. रवीन्द्र रचना संचयन (2009)
8. रवीन्द्र रचना संचयन,
9. पूर्वोक्त, पृ0 180
10. पूर्वोक्त, पृ0 196
11. पूर्वोक्त, पृ0 165
12. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ; गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, मथुरा : प्रभात प्रकाशन (1957) पृ0 21.
13. वही, पृ0 25,
14. रवीन्द्र रचना संचयन,
15. ठाकुर रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ मथुरा: प्रभात प्रकाशन (1957) पृ0 25,
16. पूर्वोक्त, पृ0 29, 17.पूर्वोक्त, पृ0 67, 18. पूर्वोक्त, पृ0 87, 19. पूर्वोक्त, पृ0 69, 20. पूर्वोक्त, पृ0 71, 21.पूर्वोक्त, पृ0 81,
22. डब्ल्यू. वी. यीट्स, भूमिका 'गीतांजलि', अनु0 रमेश नैयर, नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट (मई 2010), पृ0 24.
23. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ; गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, मथुरा : प्रभात प्रकाशन (1957) पृ0 241
24. विद्यालंकार, सत्यकाम, गीतांजलि, दिल्ली : राजपाल, (1960)पृ0 5
25. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ; गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, मथुरा : प्रभात प्रकाशन (1957) पृ0 261
26. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-8, दिल्ली : राजकमल (1998) पृ0 435
27. नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट, पूर्वोक्त, पृ0 25
28. विद्यालंकार, सत्यकाम ; पूर्वोक्त, पृ0 6-7
29. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ; गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, मथुरा : प्रभात प्रकाशन (1957) पृ0 12
30. पूर्वोक्त, पृ0 21, 31. पूर्वोक्त, पृ0 43, 32. पूर्वोक्त, पृ0 45
33. पूर्वोक्त, पृ0 57, 34. पूर्वोक्त, पृ0 59, 35. पूर्वोक्त, पृ0 77
36. पूर्वोक्त, पृ0 89, 37. पूर्वोक्त, पृ0 97, 38. पूर्वोक्त, पृ0 99, 39. पूर्वोक्त, पृ0 111, 40. पूर्वोक्त, पृ0 119, 41. पूर्वोक्त, पृ0 147, 42. पूर्वोक्त, पृ0 153, 43. पूर्वोक्त, पृ0 171, 44. पूर्वोक्त, पृ0 177, 45. पूर्वोक्त, पृ0 21, 46. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-8 पूर्वोक्त, पृ0 345
47. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-8, पूर्वोक्त, पृ0 337
48. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, मथुरा: प्रभात प्रकाशन (1957) पृ0 62,
49. वही पृ0 102
50. वही पृ0 117
51. वही पृ0 147
52. वही पृ0 151
53. वही पृ0 177
54. वही पृ0 189
55. वही पृ0 156-157
56. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-8, पूर्वोक्त, पृ0 333
57. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, पूर्वोक्त, पृ0 191
58. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-8, पूर्वोक्त, पृ0 300
59. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि, अनु0 शास्त्री, पृथ्वीनाथ, पूर्वोक्त, पृ0 33
60. विद्यालंकार, सत्यकाम, पूर्वोक्त, पृ0 4-5
61. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, धर्म का अधिकार, रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग-1), अनु0 नरवणे, विश्वनाथ, नई दिल्ली; साहित्य अकादेमी (1977) पृ0 221

शोध संचयन

SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)

ISSN 0975-1254 (Print)

RNI No.: DELBIL/2010/31292

**Bilingual journal
of Humanities &
Social Sciences**

Half Yearly

**Vol. 1, Issue 2,
15 July, 2010**

**गीतांजलि :
आध्यात्मिक चेतना
का स्वरूप और
समकालीन
प्रासंगिकता
हरदीप सिंह
डॉ० रश्मि चतुर्वेदी**

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी
विभाग, एस.सी.डी.राजकीय कॉलेज,
लुधियाना, हिन्दी विभाग, महिला
महाविद्यालय, कानपुर

www.shodh.net

62. टाकुर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि, अनु० शास्त्री, पृथ्वीनाथ, पूर्वोक्त, पृ० 31
63. Yeats, W.B. Introduction, Gitanjali

शोध. संचयन

SHODH SANCHAYAN